समाज का आईना : हिंदी–ग़ज़लें

सचिन प्रधान
रुड़की, जिला हरिद्वार,

साहित्य और समाज का संबंध साहित्य के उदयकाल से चला आ रहा है। साहित्य मानव के सामाजिक संबंधों को और भी दृढ़ बनाता है, क्योंकि उसमें संपूर्ण मानव–जाति का हित सम्मिलित रहता है। आदिकवि वाल्मीकि ने अपनी 'रामायण' में एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था का चित्रण करके, अपने दृष्टिकोण के अनुसार, समाज के विभिन्न पहलुओं की विवेचना करते हुए यह स्पष्ट किया कि मानव–समाज किस पथ का अनुसरण करते हुए संतोष और सुख का अनुभव कर सकता है। तुलसी ने भी अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर, राम–राज्य और राम परिवार को मानव–समाज के सम्मुख आदर्श रुप में प्रस्तुत किया। इसका कारण यह है कि साहित्यकार वास्तव में समाज की अवस्था, वातावरण, धर्म–कर्म, रीति–नीति तथा सामाजिक शिष्टाचार एवं लोक व्यवहार से ही अपने साहित्य के उपकरण चुनता है और उनका प्रतिपादन अपने आदर्शों के अनुरुप ही करता है। साहित्यकार उसी समाज का प्रतिनिधित्व करता है, जिसमें वह जन्म लेता है। इसी सामाजिक वातावरण में उसका शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक विकास भी होता है।

अर्थात् साहित्य और समाज निरंतर एक–दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। दोनों में आदान–प्रदान तथा क्रिया–प्रतिक्रिया का भाव चलता रहता है। इसी से सामाजिक उन्नति की आधारशिला दृढ़ बनती है। संसार में अभी तक हुए अनेक परिवर्तनों के मूल में कोई न कोई विचारधारा कार्यरत रहती आई है। इस विचारधारा का चित्रण साहित्य द्वारा ही होता है। फ्रांस की प्रसिद्ध राज्य–क्रान्ति के मूल में वॉल्टेयर और रुसों के क्रान्तिकारी विचार कार्य कर रहे थे। भारतीय स्वाधीनता संग्राम में स्वतन्त्र देशों की क्रान्तिकारी विचारधारा से प्रभावित साहित्य ने बहुत बड़ा योगदान दिया था। इस प्रकार साहित्य हमारे समाज का दर्पण मात्र न रहकर, उसका नियामक और उन्नायक बन जाता है। इसी संदर्भ में अपने विचार प्रकट करते हुए प्रसिद्ध निबंधकार बाबू गुलाबराय कहते हैं– **"कवि या लेखक अपने समय का प्रतिनिधि होता है। उसको जैसा मानसिक खाद मिल जाता है, वैसी ही उसकी कृति होती है। वह अपने समय के वायुमण्डल में घूमते हुए विचारों को मुखरित कर देता है। साहित्यकार वह बात कहता है, जिसका सब लोग अनुभव करते हैं, किंतु जिसको सब लोग कह नहीं सकते। सहृदयता के कारण उसकी अनुभव–शक्ति औरों की अपेक्षा अधिक होती है।"**

समाज की उन्नति तभी सम्भव है – जब हमारा हृदय संवेदनशील तथा बुद्धि विकसित और परिष्कृत हो। इन दोनों कार्यों के लिए साहित्य सबसे प्रभावशाली साधन है। वह हमारे हृदय को संवेदनशील बनाता है, हमारी अनुभूतियों का परिष्कार करता है। साहित्य सेवन से हमारा मन परिष्कृत और हृदय उदार हो जाता है। इससे मनुष्य की भावनाएँ कोमल बनती है, मनुष्यता का विकास होता है, शिष्टता और सभ्यता आती है, जिससे दूसरों के साथ व्यवहार करने की कुशलता प्राप्त होती है। इससे समाज में शान्ति की स्थापना होकर विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। अतः सामाजिक जीवन में साहित्य का सामर्थ्य और महत्त्व निर्विवाद है।

आचार्य मम्मट ने काव्य अर्थात् साहित्य के छः प्रयोजन बताए हैं–

काव्यं यशसेऽर्थकरे व्यवहार विदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिवृर्तये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे।।

अर्थात् साहित्य का प्रयोजन है – यश, धन, व्यवहार–कुशलता, अमंगल से रक्षा, आनन्द और कान्ता के समान मधुर उपदेश देना। ये छः प्रयोजन जीवन के भी सर्वमान्य प्रयोजन हैं। जीवन में हमें यश की आकांक्षा रहती है, धन भी सभी चाहते हैं। जीवन के सुचारु संचालन के लिए व्यवहार कुशलता की अत्यन्त आवश्यकता पड़ती है। अमंगल से रक्षा हुए बिना जीवन अभिशाप बन जाता है। मधुर उपदेश के प्रभाव के उदाहरणस्वरुप सम्पूर्ण साहित्य उपस्थित किया जा सकता है। जब अनेक नीति–शास्त्र उपदेश और ताड़ना द्वारा हमें समझाने में असमर्थ रहते हैं, उस समय भी मधुरता और कोमलता से भरी यह वाणी हमें वश में करके हमसे जो चाहती है, करा लेती है। इन प्रयोजनों की आवश्यकता हमें तभी पड़ती है, जब हम समाज का एक अभिन्न अंग होते हैं।

आज हिंदी–ग़ज़ल में समाज से जुड़े हुए हर उस अच्छे–बुरे पहलू को अभिव्यक्ति मिल रही है, जो व्यक्ति के जीवन पर सकारात्मक या नकारात्मक, किसी भी रुप में, गहरा प्रभाव डालते हैं या डाल सकने में समर्थ हैं। राजनीति में जो स्थान मार्क्सवाद या साम्यवाद का है, वही स्थान साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा का है। साहित्य में प्रगतिवादी विचारधारा के आगमन के बाद हिंदी–उर्दू–साहित्य में 'कथ्य' की दृष्टि से व्यापक परिवर्तन हुए। उर्दू–ग़ज़ल भी इश्क और रुमानियत से हटकर आम आदमी की बेबसी एवं बेकसी को चित्रित करने लगी। सन् 1960 के बाद हिंदी–ग़ज़ल के क्षेत्र में दुष्यंत कुमार त्यागी का पदार्पण हुआ, जिन्होंने हिंदी ग़ज़ल में रुमानियत के स्थान पर आम आदमी के सुख–दुःख एवं मानवीय संवेदनाओं का आविर्भाव किया। बिलखते भूखे बच्चों एवं ग़रीबों की पीड़ा, दूषित राजनीति के कारण बढ़ता सामाजिक प्रदूषण, मिलों में काम करते मासूम बच्चे, शहरों में बढ़ती भीड़ के बावजूद अकेलापन, आतंकवाद एवं अलगाववाद, क्षीण होती मानवीय संवेदनाएँ, दायरों में सिमटते मानवीय संबंध, शहरों से गाँवों तक, महलों से झोंपड़ों तक, रेगिस्तानों से हरे–भरे खेत–खलिहानों तक हिंदी–ग़ज़ल का कथ्य–क्षेत्र विस्तृत होता गया। हिंदी ग़ज़ल के व्यापक आयामों की चर्चा करते हुए हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ0 गिरिराजशरण अग्रवाल लिखते हैं– **"हिंदी–ग़ज़ल का आँगन बहुत विस्तृत हुआ है, उसके विषयों में विविधता आई है और वह जीवन और समाज के अधिक से अधिक पहलुओं को समेटने में सफल हुई है। गाँव से लेकर नगर और नगर से लेकर महानगर तक सब कुछ उसके क्षेत्र में आ गया है। सामाजिक संदर्भों से लेकर राजनीतिक दृष्टिकोण तक तथा व्यक्तिगत रिश्तों से लेकर पारिवारिक संबंधों तक इसका दायरा विस्तृत हुआ है।"**

इसी संदर्भ में हिंदी ग़ज़लकार डॉ0 अनिल शर्मा लिखते हैं– **"साहित्यिक आलोचकों और काव्य–समीक्षकों ने ग़ज़ल में सामाजिक संदर्भों को खोजने या ग़ज़ल के अशआर को आम जीवन से जोड़ने का जिस पक्षधरता के साथ समर्थन किया है और इस गुण को ग़ज़ल का सबसे बड़ा गुण माना है, उसने ग़ज़ल को उसकी विषय–सामग्री के दृष्टिकोण से काफी कुछ परिवर्तित किया। ग़ज़ल को सामाजिक संदर्भों से जोड़ने का यह पहलू सकारात्मक रहा है, और उसी के कारण ग़ज़ल को प्रेम, वियोग, व्यक्तिगत पीड़ा, मिलन और जुदाई जैसे सीमित दायरे वाले विषयों से बाहर निकालकर मानव–जीवन के व्यापक धरातल पर उतारा जा सका है। जीवन और समाज पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव डालने वाले सभी तत्वों को हिंदी–ग़ज़लों में पर्याप्त स्थान दिया गया है। सामाजिक, राजनीतिक, वैयक्तिक, धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक विसंगतियों जैसे अन्यान्य बोध भी हिंदी–ग़ज़लों में परिलक्षित होते हैं।"**

हिंदी के ग़ज़लकारों ने ग़ज़ल का परिचय आम आदमी के दुःख–दर्द से कराया। हिंदी–ग़ज़लों में मनुष्य के दुःखों, अभावों और उसकी पीड़ा को जिस प्रकार अभिव्यक्ति मिली है, उससे प्रेरित होकर डॉ0 रोहिताश्व अस्थाना कहते हैं–

दर्द का इतिहास है हिंदी–ग़ज़ल,
एक शाश्वत प्यास है हिंदी–ग़ज़ल।

प्रेम, मदिरा, रुप की बातों–भरी,
अब कहाँ उपहास है हिंदी–ग़ज़ल।

आदमी के साथ नंगे पाँव ही,
ढो रही संत्रास है हिंदी–ग़ज़ल।

आदमी की ज़िंदगी का आईना,
आईने की प्यास है हिंदी–ग़ज़ल।

काव्य की चर्चित विधा बन जाएगी,
इक नया विश्वास है हिंदी–ग़ज़ल।

हिंदी ग़ज़लों में अभिव्यक्त स्वरों की विविधता पर डॉ0 गिरिजानंदन 'आकुल' ने बड़े ही सटीक एवं प्रभावशाली ढंग से प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं–

तीक्ष्णतर अनुभूतियों का धाम है हिंदी–ग़ज़ल,
वेदना की सीपियों का नाम है हिंदी–ग़ज़ल।

रुप–रति–व्यापार ही इसकी सरस सरगम नहीं,
क्रांति की हुंकार का उपनाम है हिंदी–ग़ज़ल।

यह अनल के फूल की तोड़ी हुई है पंखुरी,
आँसुओं की धार का परिणाम है हिंदी–ग़ज़ल।

आदमी को आदमी के रुप में समझने के लिए अनुभूति की प्रामाणिकता एक कसौटी का काम करती है। डॉ0 कुँअर बेचैन ने ग़ज़लकार से यह अपेक्षा की है कि वह अनुभूति की प्रामाणिकता के साथ ग़ज़ल का सृजन करे–

खुद को नज़र के सामने लाकर ग़ज़ल कहो,
इस दिल में कोई दर्द बिठाकर ग़ज़ल कहो।

अब तक तो तुमने मैकदों पे ही ग़ज़ल कही,
होठों से अब यह जाम हटाकर ग़ज़ल कहो।

आज का हिंदी–ग़ज़लकार यथार्थ के धरातल पर युग की पीड़ा को भोगकर ग़ज़ल कहता है। साठोत्तरी हिंदी–ग़ज़ल के प्रसिद्ध ग़ज़लकार चन्द्रसेन विराट का कथन द्रष्टव्य है–

हम निचोड़ते हैं आत्मा का लहू,
तब कहीं जा के ग़ज़ल होती है।

डॉ0 कुँअर बेचैन अपनी ग़ज़लों में सामाजिक संदर्भों को बहुत ही सशक्त रुप में अभिव्यक्ति देते हैं–

अब आग के लिबास को ज्यादा न दाबिए,
सुलगी हुई कपास को ज्यादा न दाबिए।

चुभकर कहीं बना ही न दे घाव पाँव में,
पैरों तले की घास को ज्यादा न दाबिए।

पीने लगे न खून भी आँखों के साथ–साथ,
यों आदमी की प्यास को ज्यादा न दाबिए।

इन शेरों में **'आग का लिबास'** वस्तुतः गरीब जनता का लिबास है, जिनसे अनगिनत निर्धन लिपटे हुए हैं और उनका जीवन वह **'सुलगी हुई कपास'** है, जिसकी आग भीतर ही भीतर फैलती जा रही है। कवि व्यवस्थापकों को चेतावनी देता है कि यदि तुमने इस आग को दबाने का प्रयास किया तो यह आग और ज्यादा भड़क सकती है।

प्रसिद्ध हिंदी–ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार ने भी समाज के पिछड़े निर्धन वर्ग के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहा है–

ये सारा जिस्म झुककर बोझ से दुहरा हुआ होगा,
मैं सजदे में नहीं था, आपको धोखा हुआ होगा।
यहाँ तक आते–आते सूख जाती हैं कई नदियाँ,
मुझे मालूम है पानी कहाँ ठहरा हुआ होगा।

उपर्युक्त शेरों से स्पष्ट है कि आर्थिक लाभ की नदियाँ निर्धन एवं पीड़ित वर्ग तक आते–आते पता नहीं कहाँ ठहरकर सूख जाती हैं और उन्हें कौन बीच में ही रोक लेता है? दुष्यंत जी का स्पष्ट संकेत है कि अर्थतंत्र पर प्रभुत्व जमाने वाली शक्तियाँ पीड़ितों और वंचितों तक उनकी मेहनत का लाभ पहुँचने ही नहीं देती हैं।

अव्यवस्था को सुव्यवस्था में बदलने के लिए कोई व्यक्ति देवलोक से नहीं आएगा। देशवासियों को स्वयं अपने अन्दर वह भाव पैदा करना होगा, जो किसी भी संघर्ष के लिए तैयार कर सके। हिंदी–ग़ज़ल के प्रणेता महान ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार अपने निम्न शेरों के माध्यम से देशवासियों में जोश जाग्रत करते हुए कहते हैं–

हो गई है पीर पर्वत सी पिंघलनी चाहिये,
अब इस हिमालय से कोई गंगा निकलनी चाहिये।

सिर्फ़ हंगामा खड़ा करना मेरा मक़सद नहीं,
मेरी कोशिश है कि ये सूरत बदलनी चाहिये।

मेरे सीने में नही तो तेरे सीने में सही,
हो कहीं भी आग, लेकिन आग जलनी चाहिये।

युवा हिंदी–ग़ज़लकार मनोज 'अबोध' व्यवस्था परिवर्तन के लिए अधिकार–भावना से संघर्ष करने का आह्वान करते हुए कहते हैं–

युग–परिवर्तन खाली नारों से कब हो पाया,
एक लड़ाई लड़नी होगी अधिकारों के साथ।

माली ही फूलों की खुशबू कब तक बेचेंगे,
सीमाएँ तय करनी होगी ग़द्दारों के साथ।

आर्थिक विषमता जन्य निर्धनता दिन–प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। कितने ही लोगों को तन ढकने के लिए एक वस्त्र भी नहीं मिलता। व्यक्ति जी–तोड़ मेहनत करता है, किंतु फिर भी अपने बच्चे के मन बहलाव के लिए एक खिलौना भी नहीं जुटा पाता। ग़ज़लकार ओंकार गुलशन का सामाजिक व्यवस्था पर करारा व्यंग्य देखिए–

कितने जिस्मों पे नहीं आज भी कपड़ा कोई,
इस समस्या पे तो आयोग न बैठा कोई।
चोर बनता नहीं बच्चा तो भला क्या बनता,
जब खिलौना नहीं बाजार में सस्ता कोई।

भौतिकवाद की अतिशयता के कारण आज आत्मीयता समाप्तप्रायः होती जा रही है। आदमी अब आदमी से निरंतर दूर होता जा रहा है। जीवन में आत्मीयता जनित प्रेमानुभूति नाम की कोई वस्तु शेष ही नहीं रह गई है। हिन्दी के विद्वान एवं ग़ज़लकार डॉ0 योगेन्द्र नाथ शर्मा 'अरुण' ने वर्तमान सामाजिक संदर्भों में जिन्दगी का खाका इस प्रकार खींचा है।

खत्म होती जा रही है ज़िंदगी,
आज खुद को खा रही है ज़िंदगी।

आदमी अब आदमी से दूर है,
मरसिया–सा गा रही है ज़िंदगी।

हमने सोचा चैन से कट जाएगी,
पर क़हर–सा ढा रही है ज़िंदगी।

होठ ही मुस्कान के दुश्मन हुए,
दर्द बनती जा रही है ज़िंदगी।

भारतीय संस्कृति का **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का आदर्श आज बिल्कुल निरर्थक–सा हो गया है। आज आदमी केवल अपने तक सीमित रहना चाहता है। इसी मानसिकता को माणिक वर्मा ने प्रस्तुत शेर में बहुत सुंदर ढंग से अभिव्यक्त किया है–

आप अपनी सरहदों में सो गया है आदमी,
चीन की दीवार जैसा हो गया है आदमी।

संकीर्ण सोच और स्वार्थ की भावना के कारण आदमी जानवर से भी बदतर हो गया है। उसकी पशु–प्रवृत्ति पर व्यंग्य करते हुए डॉ0 गिरिराजशरण अग्रवाल कहते हैं–

क्यों न उतरा आदमी के वेश में,
भेड़िया सोचेगा औ' पछताएगा।

दूसरों को रौंदकर आगे निकल,
वरना तू भी नासमझ कहलाएगा।

प्राकृतिक जीवन से कटकर और औद्योगिक नगरों की भीड़ में गुम होकर आदमी कितना सीमित, कितना बौना और कितना अधूरा हो गया है कि उसका समूचा संसार, स्वयं उसके कमरे की छत तक सिमटकर रह गया है। डॉ0 गिरिराजशरण का निम्न शेर हमें यही अनुभव कराता है–

सिमटा तो आज अपने ही कमरे की छत बना,
कल तक तो आसमान–सा फैला हुआ था मैं।

यंत्रवत् व्यस्त नगरीय जीवन के प्रभाव के कारण मानव–हृदय की कोमल अनुभूतियाँ निरंतर अस्तित्वहीन एवं क्षीण होती जा रही हैं। इसी विषय में प्रसिद्ध ग़ज़लकार ज़हीर कुरैशी लिखते हैं–

रिश्तों के आईने जहाँ टूटे हैं बार–बार,
उन स्वार्थों की बेरहम चट्टान है शहर।

जिसमें कभी भी प्यार की खुशबू नहीं मिली,
इक वेश्या के अधरों की मुस्कान है शहर।

जीता है जिसमें आदमी मुर्दों की ज़िंदगी,
कुछ लाख ज़िंदा लाशों का शमशान है शहर।

आश्चर्य है कि फिर भी पहनते हैं इसको लोग,
कीचड़ के ताल में धुला परिधान है शहर।

नारी शोषण एवं नारी अत्याचार को दृष्टि में रखकर हिंदी ग़ज़ल भी संवेदना से भर गई है। डॉ0 गिरिराजशरण अग्रवाल पारिवारिक शोषण की चक्की में पिसती औरत की स्थिति का वर्णन करते हुए कहते हैं–

आँखों की भाषा कहती है, मौन हुआ जिसका गहना,
मन की बातें मन में रखती, बेचारी औरत घर की।

समाज से खिन्न नारी का दर्द डॉ0 अग्रवाल की ग़ज़ल के निम्न दो शेरों में देखिए–

कौन मुझको मेरा पता देगा,
कौन अब मुझको रास्ता देगा।

दर्द, बेचैनियाँ, घुटन, आँसू,
ये जहाँ मुझको और क्या देगा।

राजनीतिक छल प्रपंच के कारण सामाजिक ढाँचा टूट रहा है। देश का नागरिक अथवा मतदाता एक खिलौना–मात्र बनकर रह गया है, जिसे राजनीति के लोग अपनी मर्जी से जैसे चाहे वैसे इस्तेमाल कर रहे हैं। महान ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार के दो शेर द्रष्टव्य हैं–

चीड़–वन में आँधियों की बात मत कर,
इन दरख़्तों के बड़े नाजुक तने हैं।

जिस तरह चाहो बजाओ इस सभा में,
हम नहीं है आदमी, हम झुनझुने हैं।

वर्तमान राजनीतिक परिवेश पर कटाक्ष करते हुए ग़ज़लकार ओंकार गुलशन कहते हैं–

क़दम–क़दम पे अंधेरा है, क्या किया जाए,
नज़र से दूर सवेरा है, क्या किया जाए।

जिन्हें मदद् की जरुरत है आजकल यारों,
उन्हीं पे जुल्म का घेरा है, क्या किया जाए।

जिधर भी जाओ सियासत ने उस तरफ 'गुलशन',
हवा में ज़हर बिखेरा है, क्या किया जाए।

आज भारतीय लोकतन्त्र अपनी स्थिति पर आँसू बहा रहा है। सफ़ेदपोश माफ़िया अपने–अपने स्वार्थों के हिसाब से इसकी मनमानी व्याख्या कर लेते हैं। लोककल्याणार्थ जिस संविधान को लेकर लोकतन्त्र चला था, उसमें भी कुर्सीपरस्ती की नीति के अन्तर्गत राजनेताओं ने व्यापक काट–छाँट की है। हिन्दी के प्रतिष्ठित ग़ज़लकार दुष्यंत कुमार ने घायल लोकतंत्र की पीड़ा को प्रतीकों के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया है–

वह आदमी नहीं है मुकम्मल बयान है,
माथे पे उसके चोट का गहरा निशान है।

सामान कुछ नहीं है फटेहाल है मगर,
झोले में उसके पास कोई संविधान है।

संसद में निरर्थक बहस और राजनीतिक भ्रष्टाचार के सम्बन्ध में दुष्यंत कुमार की ही अभिव्यक्ति देखिए–

इस सड़क पर इस क़दर कीचड़ बिछी है,
हर किसी का पाँव घुटनों तक सना है।

पक्ष औ' प्रतिपक्ष संसद में मुखर हैं,
बात इतनी है कि कोई पुल बना है।

हिंदी–ग़ज़ल का मुख्य पात्र और उसका मुख्य केन्द्र कोई और नहीं बल्कि आदमी और केवल आदमी है। यह चाहे सुनसान अँधेरी रात में हो चाहे पूर्णिमा रात की चाँदनी में हो और चाहे अपने ही जैसे आदमियों की क्रूरता अथवा करुणा के बीच हो। इस आदमी की खोज को ही हिंदी–ग़ज़लकारों ने अपना रचना–धर्म माना है। अभिव्यक्ति में सारे दृश्य, सारे रंग और परिप्रेक्ष्य आदि अतिरिक्त सामग्री की तरह प्रयोग होते हैं, केन्द्र बिंदु आदमी ही रहता है। दुःख देने वाली आदमी, दुःख भोगने वाला आदमी, सभ्य आदमी, असभ्य आदमी, पशु–प्रवृत्ति वाला आदमी, भीतर ही भीतर टूट रहा आदमी और आदमी का दुश्मन भी आदमी आदि अनेक रुपों में हिंदी–ग़ज़लकारों ने 'आदमी' को अपनी ग़ज़लों का वर्ण्य–विषय बनाया है। ज़िंदगी से निराश आदमी की स्थिति का व्यापक चित्रण करते हुए हिंदी ग़ज़लकार श्याम 'बेबस' लिखते हैं–

धूल बनकर आसमाँ पर छा रहा है आदमी,
नर्क धरती को बनाता जा रहा है आदमी।

उड़ गई है नींद रातों की औ दिन का चैन भी,
नींद वाली गोलियाँ अब खा रहा है आदमी।

जिंदगी से हो गया मायूस शायद इसीलिए,
गीत प्रतिपल मृत्यु का ही गा रहा है आदमी।

मानवीय दृष्टिकोण से विमुख हो रहे आदमी का निरंतर पतन हो रहा है। वह 'पर' की भावना को छोड़कर 'स्व' की संकीर्ण सीमाओं में सिमट सा गया है। आज स्वार्थी लोगों के कृत्यों को देखकर सिर शर्म से झुक जाता है। कमज़ोर पड़ रही मानवता की भावना और विलुप्त हो रहे प्रेम के वातावरण से चिंतित ग़ज़लकार ऋषिपाल धीमान 'ऋषि' के निम्न शेर पतनोन्मुख समाज पर करारी चोट करते हैं–

गुलशन हमारे प्यार का ऐसे उजड़ गया,
ईंसानियत का पेड़ ज्यों जड़ से उखड गया।

देखा जो आदमी का सुलूक़ आदमी के साथ,
मैं क्या बताऊँ? शर्म से धरती में गड़ गया।

टूटन और घुटन का शिकार यह आदमी भीतर और बाहर एक जैसा नहीं है। ऊपर से प्रसन्न दिखाई देने वाले व्यक्ति के हृदय में परिवेशगत पीड़ा निरंतर प्रवाहमान है। आधुनिक ज़िंदगी की इस स्थिति को हिंदी ग़ज़लकार योगेन्द्र मौद्गिल ने अपनी ग़ज़ल के निम्न शेरों में अभिव्यक्त किया है–

रात अँधेरी, सर्द हवाएँ, आसमान सकुचाया सा,
तन–गुम्बद में मन का पंछी अकुलाया–अकुलाया सा।

हिंसा, कत्ल, डकैती, क्रफ़्र्यू, हवस, त्रासदी, कुंठाएँ,
नगरी का हर बाशिंदा है, मुर्झाया–मुर्झाया सा।

जाने कितने बरस लगेंगे हमें आदमी होने मैं,
अंतर्मन में कौंध रहा है प्रश्न यही थर्राया–सा।

निश्चत ही वेदना और निराशा की अपर्युक्त अभिव्यक्ति ने समाज के कड़वे सच को उजागर किया है। अनेक ऐसी परिस्थितियाँ हैं, जिनसे हृदय में पीड़ा का तीव्र आभास होता है। मनुष्य का अकेलापन, धर्म और जाति के नाम पर किए जाने वाले भेदभाव और अन्य अनेक प्रकार की चिंताएँ और उस पर कुछ न कर पाने और कोई राह न मिल पाने की विवशता, ये सब मिलकर मनुष्य को वेदना और निराशा के भाव से भर देते हैं–

गुनगुनाने के लिए कोई बहाना है कहाँ,
तुम दुःखी हो मेरे गम में, वो ज़माना है कहाँ।

बिन विचारे धर्म–मजहब या किसी की जात को,
सबको आँगन में बिठा ले, आशियाना है कहाँ।

दूरियाँ अब बढ गई हैं ज़िंदगी में इस तरह,
ईद, होली पर यहाँ मिलना–मिलाना है कहाँ।

सोच ने मेरी हँसी को इस तरह गूँगा किया,
अब किसी बच्चे की माफ़िक खिलखिलाना है कहाँ।

सतसंग, प्रवचन और दीक्षा के नाम पर अब व्यक्ति–पूजा का प्रचलन अत्यधिक हो गया है। गुरुजन पहले भी समाज का मार्गदर्शन करते थे और सम्मान पाते थे, लेकिन आज आध्यात्मिक क्षेत्र में भी धन का हस्तक्षेप बढ़ रहा है, जो हमारी सांस्कृतिक परंपराओं के एकदम विपरीत है। ग़ज़लकार ओमप्रकाश 'नदीम' ने स्वयंभू भगवान बने पाखंडियों के जलसों को दुकान की संज्ञा देते हुए सुंदर लाक्षणिक अभिव्यंजना की है–

कल मज़हब के मेले में दुकाने लगतीं थी,
अब मज़हब की दुकानों पर मेला लगता है।

धर्म के ठेकेदारों द्वारा कभी–कभी समाज में ऐसी–ऐसी स्थितियाँ पैदा कर दी जाती हैं कि अनायास सीधे–सच्चे आदमी का भगवान से भी भरोसा उठ जाता है और वह नास्तिकों जैसा आचरण करने लगता है। हिंदी ग़ज़लकार शंकरप्रसाद करगेती का निम्न शेर इसी भाव की सटीक अभिव्यक्ति है–

बड़ी मुश्किल में था फिर भी वह मंदिर तक नहीं आया,
उसे मालूम था भगवान पत्थर का बना होगा।

हिंदी ग़ज़ल में जहाँ एक ओर धार्मिक रुढ़िवादिता और संकीर्णता पर व्यंग्य किया गया है, वहीं दूसरी ओर आशावादी दृष्टिकोण के साथ जगत् के पालनहार प्रभु की स्तुती कर दुःखों से छुटकारा पाने की स्थिति का चित्रण भी किया गया है। ग़ज़लकार गणेशबिहारी 'तर्ज' की ग़जल के निम्न शेर प्रभु के शरणागत किसी दुःखी व्यक्ति के हृदय की आवाज़ है–

घुटी–घुटी हैं हसरतें, बुझी–बुझी सी आस है,
जो तुम नही तो हर क़दम पे जिंदगी उदास है।

न आएँ तेरे पास तो बता कि जाएँ फिर कहाँ,
दुखे हुए दिलों को एक तेरी ही तो आस है।

धर्म को संकीर्ण दायरों में क़ैद करने वाले ढोंगी लोग धर्म का मतलब समझ ही नहीं पाए हैं। वास्तव में सच्चा धर्म तो 'मानव–धर्म' है। संपूर्ण विश्व को एक मंदिर समझते हुए उसमें रहने वाले प्राणि–मात्र के प्रति प्रेम, अहिंसा और सद्भावना से परिपूर्ण व्यवहार सुनिश्चित किया जाए। डॉ0 गिरिराजशरण अग्रवाल धर्म की संकीर्ण दुनिया से कोई वास्ता नहीं रखते। उनकी दुनिया का धर्म 'इंसानियत' है और वे इंसानियत की ही इबादत करना अपना धर्म समझते हैं–

मेरी मंजिल अलग, मेरा रस्ता अलग,
सारी दुनिया से है, मेरी दुनिया अलग।

धर्म मेरा अगर है तो इंसानियत,
मेरा मंदिर जुदा, मेरी पूजा अलग।

'अतिथि देवो भव' हमारी महान सांस्कृतिक विशेषताओं में से एक है। हिंदी ग़ज़लकार किशन स्वरुप अतिथि को घर की शान बताते हुए कहते हैं कि नैतिकता का अवमूल्यन हो रहा है और अपनी खुशियाँ दूसरों को देकर उनके ग़म ले लेने वाले लोग अब बहुत कम हैं–

जिस घर में मेहमान नहीं है,
उस घर की कुछ शान नहीं है।

खुशियाँ बेचे, दर्द खरीदे,
क्या अब वह इंसान नहीं है।

भारतीय संस्कृति में सदैव 'स्व' की भावना के बजाय 'पर' की भावना को महत्तव दिया गया है। इसीलिए हमें अपने संकीर्ण दायरे से निकलकर सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिए कार्य करना चाहिए। गुलशन मदान के निम्न शेर व्यक्ति को परोपकार के लिए प्रेरित करते हैं–

अपने घर में ही दिया रखने से होगा कुछ नहीं,
अब हमें करनी पड़ेगी रोशनी हर मोड़ पर।

कोख से इस रात की जन्मेगा फिर सूरज नया,
लख भी दो अब यह इबारत हर गली, हर मोड़ पर।

हिंदी ग़ज़लकारों ने समाज में नैतिक मूल्यों के ह्रास और विसंगतियों को बहुत ही मार्मिकता के साथ अपनी ग़ज़लों में अभिव्यक्त किया है। इन ग़ज़लकारों ने मानव के नैतिक पतन की स्थिति को प्रत्येक दृष्टिकोण से जाँचा, परखा और अपने–अपने ढंग से उसे न केवल अभिव्यक्त किया, वरन् मिटते जा रहे सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना के लिए प्रेरित भी किया है।

एक ओर जहाँ कुछ असामाजिक तत्त्व हमारे सांस्कृतिक गौरव को नष्ट करने का प्रयास करते रहे हैं, वहीं दूसरी ओर हिंदी ग़ज़लकार अपनी लेखनी के माध्यम से संस्कृति के प्रति प्रेम बनाए रखने के लिए अपने विचारों की मशाल से देशवासियों का पथ प्रशस्त कर रहे हैं। ये ग़ज़लकार यह जानते हैं कि संस्कृति पर कुठाराघात करने वाले तत्त्व समय–समय पर उभरते रहते हैं, परंतु ऐसे में भी वे नागरिकों के अंदर उस आशा का संचार करते दिखाई देते हैं, जो संस्कृति की रक्षा करने तथा उसे बनाए रखने के लिए उत्साह, हौसला एवं चेतना प्रदान करती है।

मानव सभ्यता का विकास उन्हीं महान व्यक्तियों द्वारा संभव हुआ है, जिन्होंने अपने हित को समाज के हित के साथ जोड़ दिया था, अथवा जिन्होंने लोकहित के लिए अपने हित को समर्पित कर दिया। गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, अब्राहम लिंकन, महात्मा गाँधी, स्वामी दयानन्द सरस्वती, भगत सिंह, अशफ़ाक उल्ला खं आदि इसी श्रेणी के व्यक्ति थे। ऐसे ही महान व्यक्तियों के परमार्थिक जीवन की ज्योति द्वारा यह जग प्रकाशित हो रहा है। डॉ0 गिरिराजशरण अग्रवाल निम्न शेर के माध्यम से यह संदेश जन–जन तक पहुँचाना चाहते हैं–

रेत के तूफ़ाँ उठाती आ रही है आँधियाँ,
हर मरुस्थल के लिए बहती नदी हो जाइए।

तमाम सामाजिक विसंगतियों का वास्तविक चित्रण करने के साथ–साथ हिंदी ग़ज़लकार पग–पग पर आदमी को आदमी बनाने की पुरज़ोर कोशिश करते दिखाई देते हैं। आदमी बनकर जीने के लिए यह आवश्यक है कि हमारी ज़िंदगी 'स्वयं' तक ही सिमटकर न रह जाए। हम अपनी ज़िंदगी को तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति में ही न लगा दें, क्योंकि दूसरों की सेवा में ही जीवन का आनन्द हैं। डॉ0 अग्रवाल के निम्न शेर सांस्कृतिक आशावाद का सर्वोत्तम नमूना है–

धूप बनकर फैल जाओ, चाँदनी बनकर जिओ,
घुप अँधेरा छा न जाए, रोशनी बनकर जिओ।

फूल बन–बन कर बिखरती है, तपन देती नहीं,
आग बनकर ख़ाक जीना, फुलझडी बनकर जिओ।

आदमी के रुप में पैदा हुए तो क्या हुआ?
बात तो तब है कि सचमुच आदमी बनकर जिओ।

यदि दो मीठे बोल बोलकर किसी का गम हल्का कर दिया जाए, तो इसमें आदमी का क्या जाता है? डूबने वाले को तो तिनके का सहारा ही बहुत होता है, इसी प्रकार निराशा में डूबे व्यक्ति को भी हमदर्दी भरे हाथ का स्पर्श जीवन जीने की आशा से लबालब भर देता है। डॉ0 अग्रवाल के निम्न शेर हमें यही प्रेरणा तो दे रहे हैं–

बचाने के लिए बाँहे बढाना कम नहीं होता,
भँवरे के बीच तिनके का सहारा कम नहीं होता।

जहाँ तक हो सके हमदर्दियाँ बाँटो जमाने में,
ज़मी को सींचते रहने से दरिया कम नहीं होता।

इस प्राकर हम देखते हैं कि हिंदी ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों में मानवीय एवं नैतिक मूल्यों का पतन, महानगरीय जीवन की विद्रूपताएँ, भय का वातावरण, नारी शोषण एवं अत्याचार, बईमानी–झूठ–फरेब, भ्रष्टाचार, आतंकवाद व अलगाववाद, आम आदमी की पीड़ा, समाज की बिगड़ती स्थिति आदि जीवन और समाज की प्रत्येक विसंगति को पर्याप्त एवं बहुआयामी अभिव्यक्ति दी है। हिंदी ग़ज़लों में सामाजिकता का चित्रण बड़ी व्यापकता और गहनता के साथ हुआ है। इन ग़ज़लों में आम आदमी की वेदना की मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है, तो जीवन की त्रासद स्थितियों के कारण निराशा के स्वर भी मुखरित हुए हैं। एक ओर जहाँ नैतिक मूल्यों के ह्रास के विभिन्न पहलुओं की अभिव्यक्ति को प्रमुखता दी है, वहीं आशावादी दृष्टिकोण के साथ–साथ सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों एवं परम्पराओं को प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाने का प्रयास किया है। आज के भौतिकवादी युग में तेज़ रफ़्तार से दौड़ने वाला व्यक्ति प्रेम, दया, करुणा, सेवा, परमार्थ, इंसानियत, कर्त्तव्य परायणता और अतिथि–सत्कार आदि श्रेष्ठ भावों को अपने जीवन से जाने क्यों समाप्त करता जा रहा है, परन्तु 'नकारात्मकता' में 'सकारात्मकता' और 'निराशा' में 'आशा' का संचार करने वाली हिंदी–ग़ज़लें जन–जन के अंदर उन सांस्कृतिक एवं नैतिक–मूल्यों का संचार करती हैं, जो मानव को मानव बनाने में समर्थ हैं। तमाम विषय परिस्थितियों के बावजूद डॉ0 गिरिराजशरण अग्रवाल मानते हैं कि ज़िंदगी हर हाल में जीने योग्य है–

ज़िंदगी को किसलिए घाटे का सौदा मान लूँ,
सिर्फ़ खोना ही नहीं, जीवन में कुछ पाना भी है।